व्रत दे दिये। श्रीवन्दक अपने स्थान लौट
करके इसके पहले श्रीवन्दक अपने बुद्धगुरुकी वन्द-
ना करनेको प्रतिदिन उनके पास जाया करता
था। जब उसने श्रावकव्रत ग्रहण कर लिये तबसे वह नहीं
जाने लगा। यह देख बौद्धगुरुने उसे बुलाया, पर जब
श्रीवन्दकने आकर भी उसे नमस्कार नहीं किया तब संघ-
श्रीने उससे पूछा—क्यों आज तुमने मुझे नमस्कार नहीं
किया? उत्तरमें मंत्रीने मुनिके आने, उपदेश करने और
अपने व्रत ग्रहण करनेका सब हाल संघश्रीसे कह सुनाया।
सुनकर संघश्री बड़े दुःखके साथ बोला—हाय! तू ठगा गया,
पापियोंने तुझे बड़ा धोखा दिया। क्या कभी यह संभव है
कि निराश्रय आकाशमें भी कोई चल सकता है? जान
पड़ता है तुम्हारा राजा बड़ा कपटी और ऐन्द्रजालिक है।
इसीलिये उसने तुम्हें ऐसा आश्चर्य दिखला कर अपने धर्ममें
शामिल कर लिया। तुम तो भगवान् बुद्धके इतने विश्वासी
थे, फिर भी तुम उस पापी राजाकी बहकावटमें आगये?
इस तरह उसे बहुत कुछ ऊँचा नीचा समझाकर संघश्रीने
कहा—अब तुम कभी राजसभामें नहीं जाना और जाना भी
पड़े तो यह आजका हाल राजसे नहीं कहना। कारण
वह जैनी है। सो बुद्धधर्मपर स्वभावहीसे उसे प्रेम नहीं
होगा। इसलिये क्या मालूम कब वह बुद्धधर्मका अनिष्ट
करनेको तयार हो जाय? बेचारा श्रीवन्दक फिर संघश्रीकी
चिकनी चुपड़ी बातोंमें आ गया। उसने श्रावकधर्मको भी
उसी समय जलाञ्जलि देदी। बहुत ठीक कहा गया है—

स्वयं ये पापिनो लोके परं कुर्वन्ति पापिनम् ।
यथा संतप्तमानोसौ दहत्यग्निर्न संशयः ॥

(ब्रह्म नेमि)

अर्थात्—जो स्वयं पापी होते हैं वे औरोंको भी पापी बना डालते हैं। यह उनका स्वभाव ही होता है। जैसे अग्नि स्वयं भी गरम होता है और दूसरोंको भी जलाता है।

दूसरे दिन धनदत्तने राजसभामें बड़े आनन्द और धर्म [illegible] चारणमुनिका हाल सुनाया। उनमें प्रायः [illegible] लोगोंको, जो कि जैन नहीं थे, बहुत आश्चर्य हुआ। उनका विश्वास राजाके कथनपर नहीं जमा। सब आश्चर्य भरी दृष्टिसे राजाके मुहँकी ओर देखने लगे। राजाको जान पड़ा कि मेरे कहनेपर लोगोंको विश्वास नहीं हुआ। तब उन्होंने अपनी गंभीरताको हँसीके रूपमें परिवर्तित कर झटसे कहा, हाँ यह कहना तो मैं भूल ही गया कि उस समय हमारे मंत्री महाशय भी मेरे पास ही थे। यह कहकर ही उन्होंने मंत्रीपर नजर दौड़ाई पर वे उन्हें नहीं दीख पड़े। तब राजाने उसी समय नौकरोंको भेजकर श्रीवन्दकको बुलवाया। उसके आते ही राजाने अपने कथनकी सत्यता प्रमाणित करनेके लिये उससे कहा—मंत्रीजी, कल दोपहरका हाल तो इन सबको सुनाइये कि वे चारणमुनि कैसे थे? तब बौद्ध-गुरुका बहकाया हुआ पापी श्रीवन्दक बोल उठा कि महाराज, मैंने तो उन्हें नहीं देखा और न यह संभव ही है कि आकाशमें कोई चल सके? पापी श्रीवन्दकके मुहँसे उक्त वाक्योंका निकलना था कि उसी समय उसकी दोनों आँखें मुनिनिन्दाके तीव्र पापके उदयसे फूट गईं। सच है—

प्रभावो जिनधर्मस्य सूर्यस्येव जगत्रये ।
नैव संछाद्यते केन घूकप्रायेण पापिना ॥

(ब्रह्म नेमिदत्त)

जैसे संसारमें फैले हुए सूर्यके प्रभावको उल्लू नहीं रोक सकता, ठीक उसी तरह पापी लोग पवित्र जिनधर्मके प्रभावको भी नहीं रोक सकते। उक्त घटनाको देखकर राजा वगैरहने जिनधर्मकी खूब प्रशंसा की और श्रावक धर्म स्वीकार कर वे उसके उपासक बन गये।

इस प्रकार निर्मल और देवादिकें द्वारा पूज्य जिनशासनका प्रभाव देखकर भव्य पुरुषोंको उचित है कि वे निर्भ्रान्त होकर सुखके खजाने और स्वर्ग-मोक्षके देनेवाले पवित्र जिनधर्मकी ओर अपनी निर्मल और मनोवांछितकी देनेवाली बुद्धिको लगावें।

१८—ब्रह्मदत्तकी कथा।

परम भक्तिसे संसार पूज्य जिन भगवान्‌को नमस्कार कर मैं ब्रह्मदत्तकी कथा लिखता हूं। वह इसलिये कि सत्पुरुषोंको इसके द्वारा कुछ शिक्षा मिले।

कांपिल्य नामक नगरमें एक ब्रह्मरथ नामका राजा रहता था। उसकी रानीका नाम था रामिली। वह सुन्दरी थी, विदुषी थी और राजाको प्राणोंसे भी कहीं प्यारी थी, बारहवें चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त इसीके पुत्र थे। वे

छह खंड पृथ्वीको अपने वश करके सुख पूर्वक अपना राज्य शासनका काम करते थे।

एक दिन राजा भोजन करनेको बैठे उस समय उनके विजयसेन नामके रसोइयेने उन्हें खीर परोसी। पर वह बहुत गरम थी, इसलिये राजा उसे खा न सके। उसे इतनी गरम देखकर राजा रसोइयेपर बहुत गुस्सा हुए। गुस्सेमें आकर उन्होंने खीरके उसी वर्तनको इसोइयेके सिरपर देमारा। उसका सिर सब जल गया। साथ ही वह मर गया। हाय! ऐसे क्रोधको धिक्कार है, जिससे मनुष्य अपना हिताहित न देखकर बड़े बड़े अनर्थ कर बैठता है और फिर अनन्त कालतक कुगतियोंमें दुख भोगता रहता है।

रसोइया बड़े दुःखसे मरा सही, पर उसके परिणाम उस समय भी शान्त रहे। वह मरकर लवण समुद्रान्तर्गत विशाल-रत्न नामक द्वीपमें व्यन्तर देव हुआ। विभंगावधिज्ञानसे वह अपने पूर्वभवकी कष्ट कथा जानकर क्रोधके मारे काँपने लगा। वह एक सन्यासीके वेषमें राजाके पास आया और राजाको उसने केला, आम, सेव, सन्तरा, आदि बहुतसे फल भेंट किये। राजा जीभकी लोलुपतासे उन्हें खाकर सन्यासीसे बोला–साधुजी, कहिये–आप ये फल कहाँसे लाये? और कहाँ मिलेंगे? ये तो बड़े ही मीठे हैं। मैंने तो आजतक ऐसे फल कभी नहीं खाये। मैं आपकी इस भेंटसे बहुत खुश हुआ।

सन्यासीने कहा, महाराज, मेरा घर एक टापूमें है। वहीं एक बहुत सुन्दर बगीचा है। उसीके ये फल हैं। और

अनन्त फल उसमें लगे हुए हैं। सन्यासीकी रसभरी बात सुनकर राजाके मुहँमें पानी भर आया। उसने सन्यासीके साथ जानेकी तैयारी की। सच है—

शुभाऽशुभं न जानाति हा कष्टं लंपटः पुमान्।

(ब्रह्म नेमिदत्त)

अर्थात्—जिह्वालोलुपी पुरुष भला बुरा नहीं जान पाते, यह बड़े दुःखकी बात है। यही हाल राजाका हुआ। जब वह लोलुपताके वश हो उस सन्यासीके साथ समुद्रके बीचमें पहुँचा, तब उसने राजाको मारनेके लिये बड़ा कष्ट देना शुरू किया। चक्रवर्ती अपनेको कष्टोंसे घिरा देखकर पंचनमस्कार मंत्रकी आराधना करने लगा। उसके प्रभावसे कपटी सन्यासीकी सब शक्ति रुद्ध हो गई। वह राजाको कुछ कष्ट न दे सका। आखिर प्रगट होकर उसने राजासे कहा—दुष्ट, याद है ? मैं जब तेरा रसोइया था, तब तूने मुझे जानसे मार डाला था ? वही आग आज मेरे हृदयको जला रही है, और उसीको बुझानेके लिये—अपने पूर्व भवका बैर निकालनेके लिये मैं तुझे यहाँ छलकर लाया हूँ और बहुत कष्टके साथ तुझे जानसे मारूंगा, जिससे फिर कभी तू ऐसा अनर्थ न करे। पर यदि तू एक काम करे तो बच भी सकता है। वह यह कि तू अपने मुहँसे पहले तो यह कहदे कि संसारमें जिनधर्म ही नहीं है और जो कुछ है वह अन्यधर्म है। इसके सिवा पंचनमस्कार मंत्रको जलमें लिखकर उसे अपने पाँवोंसे मिटादे, तब मैं तुझे छोड़ सकता हूं। मिथ्यादृष्टि ब्रह्मदत्तने उसके बहकानेमें आकर वही किया जैसा उसे देवने कहा

था। उसका व्यन्तरके कहे अनुसार करना था कि उसने चक्रवर्त्तीको उसी समय मारकर समुद्रमें फैंक दिया। अपना वैर उसने निकाल लिया। चक्रवर्त्ती मरकर मिथ्यात्वके उदयसे सातवें नरक गया। सच है–मिथ्यात्व अनन्त दुःखों-का देनेवाला है। जिसका जिनधर्मपर विश्वास नहीं, क्या उसे इस अनन्त दुःखमय संसारमें कभी सुख हुआ है? नहीं। मिथ्यात्वके समान संसारमें और कोई इतना निन्द्य नहीं है। उसीसे तो चक्रवर्त्ती ब्रह्मदत्त सातवें नरक गया। इसलिये आत्माहितके चाहनेवाले पुरुषोंको दूरसे ही मि-थ्यात्व छोड़कर स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्तिका कारण सम्यक्त्व ग्रहण करना उचित है।

संसारमें सच्चे देव अरहन्त भगवान् हैं, जो क्षुधा, तृषा, जन्म, मरण, रोग, शोक, चिन्ता, भय, आदि दोषोंसे और धन धान्य, दासी दास, सोना, चांदी आदि दश प्रकारके परिग्र-हसे रहित हैं, जो इन्द्र, चक्रवर्त्ती, देव, विद्याधरों द्वारा वन्द्य हैं, जिनके वचन जीव मात्रको सुख देनेवाले और भवसमु-द्रसे तिरनेके लिये जहाज समान हैं, उन अर्हन्त भगवान्का आप पवित्र भावोंसे सदा ध्यान किया कीजिये कि जिससे वे आपके लिये कल्याण पथके प्रदर्शक हों।

---

१९. श्रेणिक राजाकी कथा।

केवल ज्ञानरूपी नेत्रके द्वारा समस्त संसारके पदार्थोंके देखने जाननेवाले और जगत्पूज्य श्रीजिनभगवान्‌को नमस्कार कर मैं राजा श्रेणिककी कथा लिखता हूं, जिसके पढ़नेसे सर्वसाधारणका हित होगा।

श्रेणिक मगध देशके अधीश्वर थे। मगधकी प्रधान राजधानी राजगृह थी। श्रेणिक कई विषयोंके सिवा राजनीतिके बहुत अच्छे विद्वान् थे। उनकी महारानी चेलनी बड़ी धर्मात्मा जिनभगवान्‌की भक्त और सम्यग्दर्शनसे विभूषित थी।

एक दिन श्रेणिकने उससे कहा-देखो, संसारमें वैष्णव धर्मकी बहुत प्रतिष्ठा है और वह जैसा सुख देनेवाला है वैसा और धर्म नहीं। इसलिये तुम्हें भी उसी धर्मका आश्रय स्वीकार करना उचित है।

सुनकर चेलनी देवी, जिसे कि जिनधर्मपर अगाध विश्वास है, बड़े विनयसे बोली—नाथ, अच्छी बात है, समय पाकर मैं इस विषयकी परीक्षा करूंगी।

इसके कुछ दिनों बाद चेलनीने कुछ भागवत साधुओंका अपने यहाँ निमंत्रण किया और बड़े गौरवके साथ अपने यहाँ उन्हें बुलाया। वहाँ आकर अपना ढोंग दिखलानेके लिये वे कपट मायाचारसे ईश्वराराधन करनेको

बैठे। उस समय चेलनीने उनसे पूछा, आप लोग क्या करते हैं? उत्तरमें उन्होंने कहा–देवी, हम लोग मलमूत्रादि अपवित्र वस्तुओंसे भरे हुए शरीरको छोड़कर अपने आत्माको विष्णु अवस्थामें प्राप्तकर स्वानुभवजन्य सुख भोगते हैं।

सुनकर देवी चेलनीने उस मंडपमें, जिसमें सब साधु ध्यान करनेको बैठे थे, आग लगवा दी। आग लगते ही वे सब कव्वेकी तरह भाग खड़े हुए। यह देख कर श्रेणिकने बड़े क्रोधके साथ चेलनीसे कहा–आज तुमने साधुओंके साथ बड़ा अनर्थ किया। यदि तुम्हारी उनपर भक्ति नहीं थी, तो क्या उसका यह अर्थ है कि उन्हें जानसे ही मार डालना? बतलाओ तो उन्होंने तुम्हारा क्या अपराध किया जिससे तुम उनके जीवनकी ही प्यासी हो उठी?

रानी बोली-नाथ, मैंने तो कोई बुरा काम नहीं किया और जो किया वह उन्हींके कहे अनुसार उनके लिये सुखका कारण था। मैंने तो केवल परोपकार बुद्धिसे ऐसा किया था। जब वे लोग ध्यान करनेको बैठे तब मैंने उनसे पूछा कि आप लोग क्या करते हैं? तब उन्होंने मुझे कहा था कि हम अपवित्र शरीर छोड़कर उत्तम सुखमय विष्णुपद प्राप्त करते हैं। तब मैंने सोचा कि ओहो, ये जब शरीर छोड़कर विष्णुपद प्राप्त करते हैं तब तो बहुत ही अच्छा है और इससे उत्तम यह होगा कि यदि ये निरन्तर विष्णु बने रहें। संसारमें बार बार आना और जाना यह इनके पीछे पचड़ा क्यों? यह विचार कर वे निरन्तर विष्णुपदमें रहकर सुखभोग करें,

इस परोपकार बुद्धिसे मैंने मंडपमें आग लगवा दी थी। आप ही अब विचार कर बतलाइये कि इसमें मैंने सिवा परोपकारके कौन बुरा काम किया? और सुनिये मेरे बचनोंपर आपको विश्वास हो, इसलिये एक कथा भी आपको सुनाये देती हूं।

"जिस समयकी यह कथा है, उस समय वत्सदेशकी राजधानी कोशाम्बीके राजा प्रजापाल थे। वे अपना राज्य-शासन नीतिके साथ करते हुए सुखसे समय बिताते थे। कोशाम्बीमें दो सेठ रहते थे। उनके नाम थे सागरदत्त और समुद्रदत्त। दोनों सेठोंमें परस्पर बहुत प्रेम था। उनका प्रेम उन्होंने सदा ऐसा ही दृढ़ बना रहे, इसलिये परस्परमें एक शर्त की। वह यह कि—"मेरे यदि पुत्री हुई तो मैं उसका ब्याह तुम्हारे लड़केके साथ कर दूंगा और इसी तरह मेरे पुत्र हुआ तो तुम्हें अपनी लड़कीका ब्याह उसके साथ कर देना पड़ेगा।"

दोनोंने उक्त शर्त स्वीकार की। इसके कुछ दिनों बाद सागरदत्तके घर पुत्रजन्म हुआ। उसका नाम वसुमित्र हुआ। पर उसमें एक बड़े भारी आश्चर्यकी बात थी। वह यह कि—वसुमित्र न जाने किस कर्मके उदयसे रातके समय तो एक दिव्य मनुष्य होकर रहता और दिनमें एक भयानक सर्प।

उधर समुद्रदत्तके घर कन्या हुई। उसका नाम रक्खा गया नागदत्ता। वह बड़ी खूब सूरत सुन्दरी थी। उसके पिताने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उसका ब्याह वसुमित्रके साथ कर दिया। सच है—

नैव वाचा चलत्वं स्यात्सतां कष्टशतैरपि।
(ब्रह्म नेमिदत्त)

अर्थात्—सत्पुरुष सैकड़ों कष्ट सह लेते हैं, पर अपनी प्रतिज्ञासे कभी विचलित नहीं होते। वसुमित्रका व्याह हो गया। वह अब प्रतिदिन दिनमें तो सर्प बनकर एक पिटारेमें रहता और रातमें एक दिव्य पुरुष होकर अपनी प्रियाके साथ सुखोपभोग करता। सचमुच संसारकी विचित्र ही स्थिति होती है। इसी तरह उसे कई दिन बीत गये। एक दिन नागदत्ताकी माता अपनी पुत्रीको एक ओर तो यौवन अवस्थामें पदार्पण करती हुई और दूसरी ओर उसके विपरीत भाग्यको देखकर दुखी होकर बोली–हाय! दैवकी कैसी विटम्बना है, जो कहाँ तो देवबाला सरीखी सुन्दरी मेरी पुत्री और कैसा उसका अभाग्य जो उसे पति मिला एक भयंकर सर्प? उसकी दुःख भरी आहको नागदत्ताने सुन लिया। वह दौड़ी आकर अपनी मातासे बोली–माता, इसके लिये आप क्यों दुःख करती हैं? मेरा जब भाग्य ही ऐसा था, तब उसके लिये दुःख करना व्यर्थ है। और अभी मुझे विश्वास है कि मेरे स्वामीका इस दशासे उद्धार हो सकता है। इसके बाद नागदत्ताने अपनी माताको स्वामीके उद्धार सम्बन्धकी बात समझा दी।

सदाके नियमानुसार आज भी रातके समय वसुमित्र अपना सर्पका शरीर छोड़कर मनुष्यरूपमें आया और अपने शय्या-भवनमें पहुँचा। इधर समुद्रदत्ता छुपी हुई आकर वसुदत्तके पिटारेको वहाँसे उठाले आई और उसे उसी समय उसने जला डाला। तबसे वसुमित्र मनुष्यरूपमें ही अपनी प्रियाके साथ सुख भोगता हुआ अपना समय आनन्दसे

बिताने लगा *।" नाथ! उसी तरह ये साधु भी निरन्तर विष्णुलोकमें रहकर सुख भोगें यह मेरी इच्छा थी; इसलिये मैंने वैसा किया था। महारानी चेलनी की कथा सुनकर श्रेणिक उत्तर तो कुछ नहीं दे सके, पर वे उसपर बहुत गुस्सा हुए और उपयुक्त समय न देखकर वे अपने क्रोधको उस समय दबा भी गये।

एक दिन श्रेणिक शिकारके लिये गये हुए थे। उन्होंने वनमें यशोधर मुनिराजको देखा। वे उस समय आतप योग धारण किये हुए थे। श्रेणिकने उन्हें शिकारके लिये विघ्नरूप समझकर मारनेका विचार किया और बड़े गुस्सेमें आकर अपने क्रूर शिकारी कुत्तोंको उनपर छोड़ दिया। कुत्ते बड़ी निर्दयताके साथ मुनिके मारनेको झपटे। पर मुनिराजकी तपश्चर्याके प्रभावसे वे उन्हें कुछ कष्ट न पहुँच सके। बल्कि उनकी प्रदक्षिणा देकर उनके पाँवोंके पास खड़े रह गये। यह देख श्रेणिकको और भी क्रोध आया। उन्होंने क्रोधान्ध होकर मुनिपर शर चलाना आरंभ किया। पर यह कैसा आश्चर्य जो शरोंके द्वारा उन्हें कुछ क्षति न पहुँच कर वे ऐसे जान पड़े मानो किसीने उनपर फूलोंकी वर्षा की है। सच बात यह है कि तपस्वियोंका प्रभाव कह कौन सकता है? श्रेणिकनें मुनिहिंसारूप तीव्र परिणामों द्वारा उस समय सातवें नरककी आयुका बन्ध किया, जिसकी स्थिति तेतीस सागरकी है।

---

* यह कथा जैन धर्मसे विरुद्ध है। जान पड़ता है चेलिनीरानीने अपनी बातको पुष्ट करनेके लिये अन्यमतके ग्रन्थोंका प्रमाण देकर इसे उद्धृत किया है।

इन सब अलौकिक घटनाओंको देखकर श्रेणिकका पत्थरके समान कठोर हृदय फूलसा कोमल हो गया। उनके हृदयकी सब दुष्टता निकलकर उसमें मुनिके प्रति पूज्यभाव पैदा हो गया। वे मुनिराजके पास गये और भक्तिसे उन्होंने मुनिके चरणोंको नमस्कार किया। यशोधर मुनिराजने श्रेणिकके हितके लिये उपयुक्त समय समझकर उन्हें अहिंसा-मयी पवित्र जिनशासनका उपदेश दिया। उसका श्रेणिकके हृदयपर बहुत ही असर पड़ा। उनके परिणामोंमें विलक्षण परिवर्तन हुआ। उन्हें अपने कृतकर्मपर अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ। मुनिराजके उपदेशानुसार उन्होंने सम्यक्त्व ग्रहण किया। उसके प्रभावसे, उन्होने जो सातवें नर्ककी आयुका बन्ध किया था, वह उसी समय घटकर पहले नरकका रह गया, जहांकी स्थिति चौरासी हजार वर्षोंकी है। ठीक है सम्यग्दर्शनके प्रभावसे भव्यपुरुषोंको क्या प्राप्त नहीं होता ?

इसके बाद श्रेणिकने श्रीचित्रगुप्त मुनिराजके पास क्षयोप-शमसम्यक्त्व प्राप्त किया और अन्तमें भगवान् वर्ध-मान स्वामीके द्वारा शुद्ध क्षायिकसम्यक्त्व, जो कि मोक्षका कारण है, प्राप्त कर पूज्य तीर्थंकर नाम प्रकृतिका बन्ध किया। श्रेणिक महाराज अब तीर्थंकर होकर निर्वाण लाभ करेंगे।

वे केवल ज्ञानरूपी प्रदीप श्रीजिनभगवान् संसारमें सदा-काल विद्यमान रहें, जो इंद्र, देव, विद्याधर, चक्रवर्त्ती द्वारा पूज्य हैं और जिनके पवित्र उपदेशके हृदयमें मनन और ग्रहण द्वारा मनुष्य निर्मल लक्ष्मीको प्राप्त करनेका पात्र होता है-मोक्षलाभ करता है।

२०–पद्मरथ राजाकी कथा ।
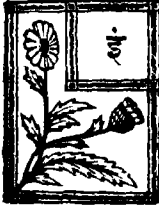
इंद्र, धरणेन्द्र, विद्याधर, राजा, महाराजाओं द्वारा पूज्य जिनभगवान्‌के चरणोंको नमस्कार कर मैं पद्मरथ राजाकी कथा लिखता हूं, जो प्रसिद्ध जिनभक्त हुआ है।

मगध देशके अन्तर्गत एक मिथिला नामकी सुन्दर नगरी थी। उसके राजा थे पद्मरथ। वे बड़े बुद्धिमान् और राजनीतिके अच्छे जाननेवाले थे, उदार और परोपकारी थे। सुतरां वे खूब प्रसिद्ध थे।

एक दिन पद्मरथ शिकारके लिये वनमें गये हुए थे। उन्हें एक खरगोश दीख पड़ा। उन्होंने उसके पीछे अपना घोड़ा दौड़ाया। खरगोश उनकी नजर बाहर होकर न जाने कहाँ अदृश्य हो गया। पद्मरथ भाग्यसे कालगुफा नामकी एक गुहामें जा पहुँचे। वहाँ एक मुनिराज रहा करते थे। वे बड़े तपस्वी थे। उनका दिव्य देह तपके प्रभावसे अपूर्व तेज धारण कर रहा था। उनका नाम था सुधर्म। पद्मरथ रत्नत्रय विभूषित और परम शान्त मुनिराजके पवित्र दर्शनसे बहुत शान्त हुए। जैसे तपा हुआ लोहपिंड जलसे शान्त हो जाता है। वे उसी समय घोड़ेपरसे उतर पड़े और मुनिराजको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उन्होंने उनके द्वारा धर्मका पवित्र उपदेश सुना। उपदेश उन्हें बहुत रुचा। उन्होंने सम्यक्त्व पूर्वक अणुव्रत ग्रहण किये। इसके बाद उन्होंने मुनिराजसे पूछा–हे प्रभो हे! संसारके आधार! कहिये तो

इस समय जिनधर्मरूप समुद्रको बढ़ानेवाले आप सरीखे गुणज्ञ चन्द्रमा और भी कोई है या नहीं? और है तो कहाँ है? हे करुणासागर! मेरे इस सन्देहको मिटाइये।

उत्तरमें मुनिराजने कहा–राजन्! चम्पानगरीमें इस समय बारवें तीर्थंकर भगवान् वासुपूज्य विराजमान हैं। उनके भौतिक शरीरके तेजकी समानता तो अनेक सूर्य मिलकर भी नहीं कर सकते और उनके अनन्त ज्ञानादि गुणोंको देखते हुए मुझमें और उनमें राई और सुमेरुका अन्तर है। भगवान् वासुपूज्यका समाचार सुनकर पद्मरथको उनके दर्शनोंकी अत्यन्त उत्कण्ठा हुई। वे उसी समय फिर वहाँसे बड़े वैभवके साथ भगवान्के दर्शनोंके लिये चले। यह हाल धन्वन्तरी और विश्वानुलोम नामके दो देवोंको जान पड़ा। सो वे पद्मरथकी परीक्षाके लिये मध्यलोकमें आये। उन्होंने पद्मरथकी भक्तिकी दृढ़ता देखनेके लिये रास्तेमें उनपर उपद्रव करना शुरू किया। पहले उन्होंने उन्हें एक भयंकर कालसर्प दिखलाया, इसके बाद राज्यछत्रका भंग, अग्निका लगना, प्रचण्ड वायुद्वारा पर्वत और पत्थरोंका गिरना, असमयमें भयंकर जलवर्षा और खूब कीचड़ मय मार्ग और उसमें फँसा हाथी आदि दिखलाया। यह उपद्रव देखकर साथके सब लोग भयके मारे अधमरे हो गये। मंत्रियोंने यात्रा अमंगलमय बतलाकर पद्मरथसे पीछे लौट चलनेके लिये आग्रह किया। परन्तु पद्मरथने किसीकी बात नहीं सुनी और बड़ी प्रसन्नताके साथ "नमः श्रीवासुपूज्याय" कहकर अपना हाथी आगे

बढ़ाया। पद्मरथकी इस प्रकार अचल भक्ति देखकर दोनों देवोंने उनकी बहुत बहुत प्रशंसा की। इसके बाद वे पद्मरथको सब रोगोंको नष्ट करनेवाला एक दिव्य हार और एक बहुत सुन्दर वीणा, जिसकी आवाज एक योजन पर्यन्त सुनाई पड़ती है, देकर अपने स्थान चले गये। ठीक कहा है— जिनके हृदयमें जिनभगवान्‌की भक्ति सदा विद्यमान रहती है, उनके सब काम सिद्ध हों, इसमें कोई सन्देह नहीं।

पद्मरथने चम्पानगरीमें पहुँच कर समवसरणमें विराजे हुए, आठ प्रातिहार्योंसे विभूषित, देव, विद्याधर, राजा, महाराजाओं द्वारा पूज्य, केवलज्ञान द्वारा संसारके सब पदार्थोंको जानकर धर्मका उपदेश करते हुए और अनन्त जन्मोंमें बाँधे हुए मिथ्यात्वको नष्ट करनेवाले भगवान् वासुपूज्यके पवित्र दर्शन किये, उनकी पूजा की, स्तुति की और उपदेश सुना। भगवान्‌के उपदेशका उनके हृदयपर बहुत प्रभाव पड़ा। वे उसी समय जिनदीक्षा लेकर तपस्वी हो गये। प्रव्रजित होते ही उनके परिणाम इतने विशुद्ध हुए कि उन्हें अवधि और मनःपर्ययज्ञान हो गया। भगवान् वासुपूज्यके वे गणधर हुए। इसलिये भव्य पुरुषोंको उचित है कि वे मिथ्यात्व छोड़कर स्वर्ग-मोक्षकी देनेवाली जिनभगवान्‌की भक्ति निरन्तर पवित्र भावोंके साथ करें और जिस प्रकार पद्मरथ सच्चा जिनभक्त हुआ उसी प्रकार वे भी हों।

जिनभक्ति सब प्रकारका सांसारिक सुख देती है और परम्परा मोक्षकी प्राप्तिका कारण है, जो केवलज्ञान द्वारा संसारके प्रकाशक हैं, और सत्पुरुषों द्वारा पूज्य हैं, वे भग-

वान् वासुपूज्य सारे संसारको मोक्ष सुख प्रदान करें–कर्मोंके उदयसे घोर दुःख सहते हुए जीवोंका उद्धार करें।

२१–पंच नमस्कारमंत्र–माहात्म्य कथा।

मोक्षसुख प्रदान करनेवाले श्रीअर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओंको नमस्कार कर पंच नमस्कारमंत्रकी आराधना द्वारा फल प्राप्त करनेवाले सुदर्शनकी कथा लिखी जाती है।

अंगदेशकी राजधानी चम्पानगरीमें गजवाहन नामके एक राजा हो चुके हैं। वे बहुत खूबसूरत और साथ ही बड़े भारी शूरवीर थे। अपने तेजसे शत्रुओंपर विजय प्राप्त-कर सारे राज्यको उन्होंने निष्कण्टक बना लिया था। वहीं वृषभदत्त नामके एक सेठ रहा करते थे। उनकी गृहिणीका नाम था अर्हद्दासी। अपनी प्रियापर सेठका बहुत प्रेम था। वह भी सच्ची पतिभक्तिपरायणा थी, सुशीला थी, सती थी, वह सदा जिनभक्तिमें तत्पर रहा करती थी।

वृषभदत्तके यहाँ एक गुवाल नौकर था। एक दिन वह वनसे अपने घरपर आ रहा था। समय शीतकालका था। जाड़ा खूब पड़ रहा था। उस समय रास्तेमें उसे एक ऋद्धि-धारी मुनिराजके दर्शन हुए, जो कि एक शिलापर ध्यान लगाये बैठे हुए थे। उन्हें देखकर गुवालेको बड़ी दया आई।

वह यह विचार कर, कि अहा ! इनके पास कुछ वस्त्र नहीं है और जाड़ा इतने जोरका पड़ रहा है, तब भी ये इसी शिलापर बैठे हुए ही रात बिता डालेंगे, अपने घर गया और आधी रातके समय अपनी स्त्रीको साथ लिये पीछा मुनिराजके पास आया। मुनिराजको जिस अवस्थामें बैठे हुए वह देख गया था, वे अब भी उसी तरह ध्यानस्थ बैठे हुए थे। उनका सारा शरीर ओससे भींग रहा था। उनकी यह हालत देखकर दयाबुद्धिसे उसने मुनिराजके शरीरपरसे ओसको साफ किया और सारी रात वह उनके पाँव दाबता रहा—सब तरह उनकी वैयावृत्य करता रहा। सबेरा होते ही मुनिराजका ध्यान पूरा हुआ। उन्होंने आँख उठाकर देखा तो गुवालेको पास ही बैठा पाया। मुनिराजने गुवालेको निकटभव्य समझकर पंच नमस्कारमंत्रका उपदेश किया, जो कि स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्तिका कारण है। इसके बाद मुनिराज भी पंचनमस्कारमंत्रका उच्चारण कर आकाशमें विहार कर गये।

गुवालेकी धीरे धीरे मंत्रपर बहुत श्रद्धा हो गई। वह किसी भी कामको जब करने लगता तो पहले ही नमस्कारमंत्रका स्मरण कर लिया करता था। एक दिन जब गुवाला मंत्र पढ़ रहा था, तब उसे उसके सेठने सुन लिया। वे मुस्कुराकर बोले—क्योंरे, तूने यह मंत्र कहाँसे उड़ाया ? गुवालेने पहलेकी सब बात अपने स्वामीसे कहदी। सेठने प्रसन्न होकर गुवालेसे कहा—भाई, क्या हुआ यदि तू छोटे भी कुलमें उत्पन्न हुआ ? पर आज तू कृतार्थ हुआ, जो तुझे त्रिलोकपूज्य

मुनिराजके दर्शन हुए। सच बात है सत्पुरुष धर्मके बड़े प्रेमी हुआ करते हैं।

एक दिन गुवाला भैंसें चरानेके लिये जंगलमें गया। समय वर्षाका था। नदी नाले सब पूर थे। उसकी भैंसें चरनेके लिये नदी पार जोने लगीं। सो उन्हें लौटा लानेकी इच्छासे गुवाला भी उनके पीछे ही नदीमें कूद पड़ा। जहाँ वह कूदा वहीं एक नुकीला लकड़ा गड़ा हुआ था। सो उसके कूदते ही लकड़ेकी नोख उसके पेटमें जा घुसी। उससे उसका पेट फट गया। वह उसी समय मर गया। वह जिस समय नदीमें कूदा था, उस समय सदाके नियमानुसार पंचनमस्कारमंत्रका उच्चारण कर कूदा था। वह मरकर मंत्रके प्रभावसे वृषभदत्तके यहाँ पुत्र हुआ। वह जाता तो कहीं स्वर्गमें, पर उसने वृषभदत्तके यहीं उत्पन्न होनेका निदान कर लिया था, इसलिये निदान उसकी ऊँची गतिका बाधक बन गया। उसका नाम रक्खा गया सुदर्शन। सुदर्शन बड़ा सुन्दर था। उसका जन्म मातापिताके लिये खूब उत्कर्षका कारण हुआ। पहलेसे कई गुणी सम्पत्ति उनके पास बढ़ गई। सच है-पुण्यवानोंके लिये कहीं भी कुछ कमी नहीं रहती।

वहीं एक सागरदत्त सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम था सागरसेना। उसके एक पुत्री थी। उसका नाम मनोरमा था। वह बहुत सुन्दरी थी। देवकन्यायें भी उसकी रूपमाधुरीको देखकर शर्मा जाती थी। उसका ब्याह सुदर्शनके साथ हुआ। दोनों दम्पति सुखसे रहने लगे।

एक दिन वृषभदत्त समाधिगुप्त मुनिराजके दर्शन करनेके लिये गये। वहाँ उन्होंने मुनिराज द्वारा धर्मोपदेश सुना। उपदेश उन्हें बहुत रुचा और उसका प्रभाव भी उनपर खूब पड़ा। संसारकी दशा देखकर उन्हें बहुत वैराग्य हुआ। वे घरका कारोबार सुदर्शनके सुपुर्दकर समाधिगुप्त मुनिराजके पास दीक्षा लेकर तपस्वी बन गये।

पिताके प्रव्रजित हो जानेपर सुदर्शनने भी खूब प्रतिष्ठा सम्पादन की। राजदरबारमें भी उसकी पिताके जैसी ही पूछताछ होने लगी। वह सर्व साधारणमें खूब प्रसिद्ध हो गया। सुदर्शन न केवल लौकिक कामोंमें ही प्रेम करता था; किन्तु वह उस समय एक बहुत धार्मिक पुरुष गिना जाता था। वह सदा जिनभगवान्की भक्तिमें तत्पर रहता, श्रावकके व्रतोंका श्रद्धाके साथ पालन करता, दान देता, पूजन स्वाध्याय करता। यह सब होनेपर भी ब्रह्मचर्यमें वह बहुत दृढ़ था।

एक दिन मगधाधीश्वर गजवाहनके साथ सुदर्शन वनविहारके लिये गया। राजाके साथ राजमहिषी भी थी। सुदर्शन सुन्दर तो था ही, सो उसे देखकर राजरानी कामके पाशमें बुरी तरह फँसी। उसने अपनी एक परिचारिकाको बुलाकर पूछा—क्यों तू जानती है कि महाराजके साथ आगन्तुक कौन हैं? और ये कहाँ रहते हैं?

परिचारिकाने कहा—देवी, आप नहीं जानतीं, ये तो अपने प्रसिद्ध राजश्रेष्ठी सुदर्शन हैं।

राजमहिषीने कहा-हाँ! तब तो ये अपनी राजधानीके भूषण हैं। अरी, देख तो इनका रूप कितना सुन्दर, कितना मनको अपनी ओर खींचनेवाला है? मैंने तो आजतक ऐसा सुन्दर नररत्न नहीं देखा। मैं तो कहती हूं, इनका रूप स्वर्गके देवोंसे भी कहीं बढ़कर है। तूने भी कभी ऐसा सुन्दर पुरुष देखा है।

वह बोली-महारानीजी, इसमें कोई सन्देह नहीं कि इनके समान सुन्दर पुरुषरत्न तीन लोकमें भी नहीं मिलेगा।

राजमहिषीने उसे अपने अनुकूल देखकर कहा-हाँ तो तुझसे मुझे एक बात कहना है।

वह बोली-वह क्या, महारानीजी?

महारानी बोली-पर तू उसे करदे तो मैं कहूं।

वह बोली-देवी, भला, मैं तो आपकी गुलाम हूं, फिर मुझे आपकी आज्ञा पालन करनेमें क्यों इन्कार होगा। आप निःसंकोच होकर कहिये। जहाँतक मेरा बस चलेगा, मैं उसे पूरी करूंगी।

महारानीने कहा-देख, मेरा तेरेपर पूर्ण विश्वास है, इसलिये मैं अपने मनकी बात तुझे कहती हूं। देखना कहीं मुझे धोका न देना? तो सुन, मैं जिस सुदर्शनकी बावत ऊपर तुझसे कह आई हूं, वह मेरे हृदयमें स्थान पा गया है। उसके बिना मुझे संसार निस्सार और सूना जान पड़ता है। तू यदि किसी प्रयत्नसे मुझे उससे मिलादे तब ही मेरा जीवन बच सकता है। अन्यथा समझ संसारमें मेरा जीवन कुछ ही दिनोंके लिये है।

वह महारानीकी बात सुनकर पहले तो कुछ विस्मित-सी हुई, पर थी तो आखिर पैसेकी गुलाम ही न? उसने महारानीकी आशा पूरी कर देनेके बदलेमें अपनेको आशातीत धनकी प्राप्ति होगी, इस विचारसे कहा—महारानीजी, बस यही बात है? इसीके लिये आप इतनी निराश हुई जाती हैं? जबतक मेरे दममें दम है तबतक आपको निराश होनेका कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। मैं आपकी आशा अवश्य पूरी करूंगी। आप घबरावें नहीं। बहुत ठीक लिखा है—

असभ्य दुष्टनारीभिर्निन्दितं क्रियते न किम्।

[ब्रह्म नेमिदत्त.]

अर्थात्—असभ्य और दुष्ट स्त्रियाँ कौन बुरा काम नहीं करतीं? अभयाकी धाय भी ऐसी ही स्त्रियोंमेंसे थी। फिर वह क्यों इस काममें अपना हाथ न डालती? वह अब सुदर्शनको राजमहलमें ले आनेके प्रयत्नमें लगी।

सुदर्शन एक धर्मात्मा श्रावक था। वह वैरागी था। संसारमें रहता तब भी सदा उससे छुटकारा पानेके उपायमें लगा रहता था। इसीलिये वह ध्यानका भी अभ्यास किया करता था। अष्टमी और चतुर्दशीकी रात्रिमें वह भयंकर श्मशानमें जाकर ध्यान करता। धायको सुदर्शनके ध्यानकी बात मालूम थी। उसने सुदर्शनको राजमहलमें लिवा लेजानेको एक षड्यंत्र रचा। एक दिन वह एक कुम्हारके पास गई और उससे मनुष्यके आकारका एक मिट्टीका पुतला बनवाया और उसे वस्त्र पहराकर वह राज-

महल लिवा ले चली। महलमें प्रवेश करते समय पहरेदारोंने उसे रोका और पूछा कि यह क्या है? वह उसका कुछ उत्तर न देकर आगे बढ़ी। पहरेदारोंने उसे नहीं जाने दिया। उसने गुस्सेका ढोंग बनाकर पुतलेको जमीनपर दे मारा। वह चूर चूर हो गया। इसके साथ ही उसने कड़क कर कहा— पापियो, दुष्टो, तुमने आज बड़ा अनर्थ किया है। तुम नहीं जानते कि महारानीके नरव्रत था, सो वे इस पुतलेकी पूजा करके भोजन करतीं। सो तुमने इसे फोड़ डाला है। अब वे कभी भोजन नहीं करेंगी। देखो, मैं अब महारानीसे जाकर तुम्हारी दुष्टताका हाल कहती हूं। फिर वे सबेरे ही तुम्हारी क्या गति करती हैं? तुम्हारी दुष्टता सुनकर ही वे तुम्हें जानसे मरवा डालेंगी। धायकी धूर्ततासे बेचारे पहरेदारोंके प्राण सूख गये। उन्हें काटो तो खून नहीं। मारे डरके वे थर थर काँपने लगे। वे उसके पाँवोंमें पड़कर अपने प्राण बचानेकी उससे भीख माँगने लगे। बड़ी आर्जू मिन्नत करनेपर उसने उनसे कहा—तुम्हारी यह दशा देखकर मुझे दया आती है। खैर, मैं तुम्हारे बचानेका उपाय करूंगी। पर याद रखना अब तुम मुझे कोई काम करते समय मत छेड़ना। तुमने इस पुतलेको तो फोड़ डाला, बतलाओ अब महारानी आज अपना व्रत कैसे पूरा करेंगी? और न इसी समय और दूसरा पुतला ही बन सकता है। अस्तु। फिर भी मैं कुछ उपाय करती हूं। जहाँतक बन पड़ा वहाँतक तो दूसरा पुतला ही बनवाकर लाती हूं और यदि नहीं बन सका तो किसी जिन्दा ही पुरुषको मुझे थोड़ी देरके लिये लाना पड़ेगा। तुम्हें

सचेत करती हूं कि उस समय मैं किसीसे नहीं बोलूंगी, इस लिये तुम मुझसे कुछ कहना सुनना नहीं। वेचारे पहरेदारोंको तो अपनी जानकी पड़ी हुई थी, इसलिये उन्होंने हाथ जोड़कर कह दिया कि—अच्छा, हम लोग आपसे अब कुछ नहीं कहेंगे। आप अपना काम निडर होकर कीजिये।

इस प्रकार वह धूर्त्ता सब पहरेदारोंको अपने वशकर उसी समय श्मशानमें पहुँची। श्मशान जलती हुई चिताओंसे बड़ा भयंकर बन रहा था। उसी भयंकर श्मशानमें सुदर्शन कायोत्सर्ग ध्यान कर रहा था। महारानी अभयाकी परि-चारिकाने उसे उठा लाकर महारानीके सुपुर्द कर दिया। अभया अपनी परिचारिकापर बहुत प्रसन्न हुई। सुदर्शनको प्राप्तकर उसके आनन्दका कुछ ठिकाना न रहा, मानो उसे अपनी मनमानी निधि मिल गई। वह कामसे तो अत्यन्त पीड़ित थी ही, उसने सुदर्शनसे बहुत अनुनय विनय किया, इसलिये कि वह उसकी इच्छा पूरी करके उसे सुखी करे— कामाग्निसे जलते हुए शरीरको आलिंगनसुधा प्रदान कर शीतल करे। पर सुदर्शनने उसकी एक भी बातका उत्तर नहीं दिया। यह देख रानीने उसके साथ अनेक प्रकारकी कुचेष्टायें करनी आरंभ की, जिससे वह विचलित हो जाय। पर तब भी रानीकी इच्छा पूरी नहीं हुई। सुदर्शन मेरुसा निश्चल और समुद्रसा गंभीर बना रहकर जिनभगवान्के चरणोंका ध्यान करने लगा। उसने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं इस उपसर्गसे बच गया तो अब संसारमें न रहकर साधु हो जाऊँगा। प्रतिज्ञाकर वह काष्टकी तरह निश्चल होकर ध्यान करने लगा। बहुत ठीक लिखा है—

सन्तः कष्टशतैश्चापि चारित्रान्न चलन्त्य हो।

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—सत्पुरुष सैकडों कष्ट सहलेते हैं, पर अपने व्रत-से कभी नहीं चलते। अनेक तरहका यत्न, अनेक कुचेष्टायें करनेपर भी जब रानी सुदर्शनको शीलशैलसे न गिरा सकी, उसे तिलभर भी विचलित नहीं कर सकी, तब शर्मिन्दा होकर उसने सुदर्शनको कष्ट देनेके लिये एक नया ही ढोंग रचा। उसने अपने शरीरको नखोंसे खूब खुजा डाला, अपने कपड़े फाड़ डाले, भूषण तोड़ फोड़ डाले और यह कहती हुई वह जोर जोरसे हिचकियाँ ले लेकर रोने लगी कि हाय! इस पापी दुराचारीने मेरी यह हालत करदी। मैंने तो इसे भाई समझकर अपने महल बुलाया था। मुझे क्या मालूम था कि यह इतना दुष्ट होगा? हाय! दौड़ो!! मुझे बचाओ! मेरी रक्षा करो! यह पापी मेरा सर्व नाश करना चाहता है। रानीके चिल्लाते ही बहुतसे नौकर चाकर दौड़े आये और सुदर्शनको बांधकर वे महाराजके पास लिवाले गये। सच है—

किं न कुर्वन्ति पापिन्यो निंद्यं दुष्टस्त्रियो भुवि।

(ब्रह्म नेमिदत्त)

अर्थात्—पापिनी और दुष्ट स्त्रियाँ संसारमें कौन बुरा काम नहीं करतीं? अभया भी ऐसी ही स्त्रियोंमें एक थी। इसलिये उसने अपना चरित कर बतलाया। महाराजको जब यह हाल मालूम हुआ, तो उन्होंने क्रोधमें आकर सुद-

र्शनको मार डालनेका हुकुम दे दिया। महाराजकी आज्ञा होते ही जल्लाद लोग उसे श्मशानमें लिवा ले गये। उनमेंसे एकने अपनी तेज तलवार सुदर्शनके गलेपर दे मारी। पर यह हुआ क्या? जो सुदर्शनको उससे कुछ कष्ट नहीं पहुँचा और उलटा उसे वह तलवारका मारना ऐसा जान पड़ा, मानो किसीने उसपर फूलकी माला फैंकी हो। जान पड़ा यह सब उसके अखण्ड शीलव्रतका प्रभाव था। ऐसे कष्टके समय देवोंने आकर उसकी रक्षा की और स्तुति की कि सुदर्शन, तुम धन्य हो, तुम सच्चे जिनभक्त हो, सच्चे श्रावक हो, तुम्हारा ब्रह्मचर्य अखण्ड है, तुम्हारा हृदय सुमेरुसे भी कहीं अधिक निश्चल है। इस प्रकार प्रशंसा कर देवोंने उसपर सुगन्धित फूलोंकी वर्षा की और धर्मप्रेमके वश होकर उसकी पूजा की। सच है—

अहो पुण्यवतां पुंसां कष्टं चापि सुखायते।
तस्माद्भव्यैः प्रयत्नेन कार्यं पुण्यं जिनोदितम्॥

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—पुण्यवानोंके लिये दुःख भी सुखके रूपमें परिणत हो जाता है। इसलिये भव्य पुरुषोंको जिनभगवान्के कहे मार्गसे पुण्यकर्म करना चाहिये। भक्तिपूर्वक जिनभगवान्की पूजा करना, पात्रोंको दान देना, ब्रह्मचर्यका पालना, अणुव्रतोंका पालन करना, अनाथ, अपाहिज दुखियोंको सहायता देना, विद्यालय, पाठशाला खुलवाना, उनमें सहायता देना, विद्यार्थियोंको छात्र वृत्तियाँ देना, आदि पुण्यकर्म हैं। सुदर्शनके व्रतमाहात्म्यका हाल महाराजको मालूम हुआ। वे

उसी समय सुदर्शनके पास आये और उन्होंने उससे अपने अविचारके लिये क्षमा माँगी।

सुदर्शनको संसारकी इस लीलासे बड़ा वैराग्य हुआ। वह अपना कारोबार सब सुकान्त पुत्रको सौंपकर वनमें गया और त्रिलोकपूज्य विमलवाहन मुनिराजको नमस्कार कर उनके पास प्रव्रजित हो गया। मुनि होकर सुदर्शनने दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपश्चर्या द्वारा घातिया कर्मोंका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और अनेक भव्य पुरुषोंको कल्याणका मार्ग दिखलाकर तथा देवादि द्वारा पूज्य होकर अन्तमें वह निराबाध, अनन्त सुखमय मोक्षधाममें पहुँच गया।

इस प्रकार नमस्कार मंत्रका माहात्म्य जानकर भव्योंको उचित है कि वे प्रसन्नताके साथ उसपर विश्वास करें और प्रतिदिन उसकी आराधना करें।

धर्मात्माओंके नेत्ररूपी कुमुद-पुष्पोंके प्रफुल्लित करनेवाले –आनन्द देनेवाले, और श्रुतज्ञानके समुद्र, तथा मुनि, देव, विद्याधर, चक्रवर्ती–आदि द्वारा पूज्य, केवलज्ञान रूपी कान्तिसे शोभायमान भगवान् जिनचन्द्र संसारमें सदा काल रहें।

२१—यममुनिकी कथा।

मैं देव, गुरु और जिनवाणीको नमस्कार कर यममुनिकी कथा लिखता हूं, जिन्होंने बहुत ही थोड़ा ज्ञान होनेपर भी अपनेको मुक्तिका पात्र बना लिया और अन्तमें वे मोक्ष गये। यह कथा सब सुखकी देनेवाली है।

उड्रदेशके अन्तर्गत एक धर्म नामका प्रसिद्ध और सुन्दर शहर है। उसके राजा थे यम। वे बुद्धिमान् और शास्त्रज्ञ थे। उनकी रानीका नाम धनवती था। धनवतीके एक पुत्र और एक पुत्री थी। उनके नाम थे गर्दभ और कोणिका। कोणिका बहुत सुन्दरी थी। धनवतीके अतिरिक्त राजाकी और भी कई रानियाँ थीं। उनके पुत्रोंकी संख्या पाँचसौ थी। ये पाँचसौ ही भाई धर्मात्मा थे और संसारसे उदासीन रहा करते थे। राजमंत्रीका नाम था दीर्घ। वह बहुत बुद्धिमान् और राजनीतिका अच्छा जानकार था। राजा इन सब साधनोंसे बहुत सुखी थे। और अपना राज्य भी बड़ी शान्तिसे करते थे।

एक दिन एक राज ज्योतिषीने कोणिकाके लक्षण वगैरह देखकर राजासे कहा—महाराज, राजकुमारी बड़ी भाग्यवती है। जो इसका पति होगा वह सारी पृथ्वीका स्वामी

होगा। यह सुनकर राजा बहुत खुश हुए और उस दिनसे वे उसकी बड़ी सावधानीसे रक्षा करने लगे, उन्होंने उसके लिये एक बहुत सुन्दर और भव्य तलग्रह बनवा दिया। वह इस-लिये कि उसे और छोटा मोटा बलवान् राजा न देख पाये।

एक दिन उसकी राजधानीमें पाँचसौ मुनियोंका संघ आया। संघके आचार्य थे महामुनि सुधर्माचार्य। संसारका हित करना उनका एक मात्र व्रत था। बड़े आनन्द उत्सा-हके साथ शहरके सब लोग अनेक प्रकारका पूजनद्रव्य हाथोंमें लिये हुए आचार्यकी पूजाके लिये गये। उन्हें जाते हुए देख राजा भी अपने पाण्डित्यके अभिमानमें आकर मुनियोंकी निन्दा करते हुए उनके पास गये। मुनि-निन्दा और ज्ञानका अभिमान करनेसे उसी समय उनके कोई ऐसा कर्मोंका तीव्र उदय आया कि उनकी सब बुद्धि नष्ट हो गई। वे महामूर्ख बन गये। इसलिये जो उत्तम पुरुष हैं और ज्ञानी बनना चाहते हैं, उन्हें उचित है कि वे कभी ज्ञानका गर्व न करें और ज्ञानहीका क्यों? किन्तु कुल, जाति, बल, ऋद्धि, ऐश्वर्य, शरीर, तप, पूजा, प्रतिष्ठा-आदि किसीका भी गर्व–अभिमान न करें। इनका अभिमान करना बड़ा दुःखदायी है।

अपनी यह हालत देखकर राजाका होश ठिकाने आया। वे एक साथ ही दाँतरहित हाथीकी तरह गर्व रहित हो गये। उन्होंने अपने कृत कर्मोंका बहुत पश्चात्ताप किया और मुनिराजको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उनसे धर्मो-पदेश सुना, जो कि जीव मात्रको सुखका देनेवाला है। धर्मो-

पदेशसे उन्हें बहुत शान्ति मिली । उसका असर भी उन-पर बहुत पड़ा । वे संसारसे विरक्त हो गये । वे उसी समय अपने गर्दभनामके पुत्रको राज्य सौंपकर अपने अन्य पाँचसौ पुत्रोंके साथ, जो कि बालपनहीसे वैरागी रहा करते थे, मुनि हो ये । मुनि हुए बाद उन सबने खूब शास्त्रोंका अभ्यास किया । आश्चर्य है कि वे पाँचसौ ही भाई तो खूब विद्वान् हो गये, पर राजाको—यममुनिको पंच नमस्कार मंत्रका उच्चारण करना तक भी नहीं आया । अपनी यह दशा देखकर यममुनि बड़े शर्मिन्दा और दुःखी हुए । उन्होंने वहाँ रहना उचित न समझ अपने गुरुसे तीर्थ-यात्रा करनेकी आज्ञा ली और अकेले ही वहाँसे वे निकल पड़े । यममुनि अकेले ही यात्रा करते हुए एक दिन स्वच्छन्द होकर रास्तेमें जा रहे थे । जाते हुए उन्होंने एक रथ देखा । रथमें गधे जुते हुए थे और उसपर एक आद-मी बैठा हुआ था । गधे उसे एक हरे धानके खेतकी ओर लिये जा रहे थे । रास्तेमें मुनिको जाते हुए देखकर रथपर बैठे हुए मनुष्यने उन्हें पकड़ लिया और लगा वह उन्हें कष्ट पहुँचाने । मुनिने कुछ ज्ञानका क्षयोपशम होजानेसे एक खण्ड गाथा बनाकर पढ़ी । वह गाथा यह थी—

कट्टसि पुण णिक्खेवसि रे गद्दहा जवं पेच्छसि
खादिदुमिति ।

अर्थात्—रे गधो, कष्ट उठाओगे, तो तुम जव भी खा सकोगे ।

इसी तरह एक दिन कुछ बालक खेल रहे थे । वहीं को-णिका भी न जाने किसी तरह पहुँच गई । उसे देखकर सब

बालक डरे। उस समय कोणिका को देखकर यममुनिने एक और खण्ड गाथा बनाकर आत्माके प्रति कहा। वह गाथ यह थी—

अण्णत्थ किं पलोवह तुम्हे पत्थणिबुद्धि
या छिद्दे अच्छई कोणिआ इति।

अर्थात्—दूसरी ओर क्या देखते हो? तुम्हारी पत्थर सरीखी कठोर बुद्धिको छेदनेवाली कोणिका तो है।

एक दिन यममुनिने एक मेंडकको एक कमल पत्रकी आड़में छुपे हुए सर्पकी ओर आते हुए देखा। देखकर वे मेंडकसे बोले—

अम्हादो णत्थि भयं दीहादो दीसदे भयं तुम्हे ति।

अर्थात्—मुझे—मेरे आत्माको तो किसीसे भय नहीं है। भय है, तो तुम्हें।

बस, यममुनिने जो ज्ञान सम्पादन कर पाया, वह इतना था। वे इन्हीं तीन खण्ड गाथाओंका स्वाध्याय करते, पाठ करते और कुछ उन्हें आता नहीं था। इसी तरह पवित्रात्मा और धर्मानुयायी यममुनि अनेक तीर्थोंकी यात्रा करते हुए धर्मपुरकी ओर आ निकले। वे शहर बाहर एक बगीचेमें कायोत्सर्ग ध्यान करने लगे। उनके पीछे लौट आनेका हाल उनके पुत्र गर्दभ और राजमंत्री दीर्घको ज्ञात हुआ। उन्होंने समझा कि ये हमसे पीछा राज्य लेनेको आये हैं। सो वे दोनों मुनिके मारनेका विचार कर आधीरातके समय वनमें गये। और तलवार खींचकर उनके पीछे खड़े हो गये। आचार्य कहते हैं कि—

धिक्राज्यं धिङ्मूर्खत्वं कातरत्वं च धिकुतराम्।
निस्पृहाच्च मुनेर्येन शंका राज्येऽभवत्तयोः॥

अर्थात्–ऐसे राज्यको, ऐसी मूर्खता और ऐसे डरपोंकपनेको धिक्कार है, जिससे एक निस्पृह और संसारत्यागी मुनिके द्वारा राज्यके छिने जानेका उन्हें भय हुआ। गर्दभ और दीर्घ, मुनिकी हत्या करनेको तो आये पर उनकी हिम्मत उन्हें मारनेकी नहीं पड़ी। वे बारबार अपनी तलवारोंको म्यानमें रखने लगे और बाहर निकालने लगे। उसी समय यममुनिने अपनी स्वाध्यायकी पहली गाथा पढ़ी, जो कि ऊपर लिखी जा चुकी है। उसे सुनकर गर्दभने अपने मंत्रीसे कहा–जान पड़ता है मुनिने हम दोनोंको देख-लिया। पर साथ ही जब मुनिने आधी गाथा फिर पढ़ी तब उसने कहा–नहीं जी, मुनिराज राज्य लेनेको नहीं आये हैं। मैंने जो वैसा समझा वह मेरा भ्रम था। मेरी वहिन कोणिकाको प्रेमके वश कुछ कहनेको ये आये हुए जान पड़ते हैं। इसके बाद जब मुनिराजने तीसरी आधी गाथा भी पढ़ी तब उसे सुनकर गर्दभने अपने मनमें उसका यह अर्थ समझा कि "मंत्री दीर्घ बड़ा दुष्ट है, और मुझे मारना चाहता है," यही बात पिताजी, प्रेमके वश हो तुझे कहकर सावधान करनेको आये हैं। परन्तु थोड़ी देर बाद ही उसका यह सन्देह भी दूर हो गया। उन्होंने अपने हृद-यकी सब दुष्टता छोड़कर बड़ी भक्तिके साथ पवित्र चारि-त्रके धारक मुनिराजको प्रणाम किया और उनसे धर्मका उपदेश सुना, जो कि स्वर्ग-मोक्षका देनेवाला है। उपदेश

सुनकर वे दोनों बहुत प्रसन्न हुए। इसके बाद वे श्रावक-धर्म ग्रहणकर अपने स्थान लौट गये।

इधर यमधरमुनि भी अपनी चारित्रको दिन दूना निर्मल करने लगे, परिणामोंको वैराग्यकी ओर खूब लगाने लगे। उसके प्रभावसे थोड़े ही दिनोंमें उन्हें सातों ऋद्धियाँ प्राप्त हो गईं।

अहा! नाममात्र ज्ञान द्वारा भी यममुनिराज बड़े ज्ञानी हुए–उन्होंने अपने उन्नतिको अन्तिम सीढ़ीतक पहुँचा दिया। इसलिये भव्य पुरुषोंको संसारका हित करनेवाले जिन भगवान्‌के द्वारा उपदिष्ट सम्यग्ज्ञानकी सदा आराधना करना चाहिये।

देखो, यममुनिराजको बहुत थोड़ा ज्ञान था, पर उसकी उन्होंने बड़ी भक्ति और श्रद्धाके साथ आराधना की। उसके प्रभावसे वे संसारमें प्रसिद्ध हुए, मुनियोंमें प्रधान और मान्य हुए और सातों ऋद्धियाँ उन्हें प्राप्त हुईं। इस-लिये सज्जन धर्मात्मा पुरुषोंको उचित है कि वे त्रिलोक-पूज्य जिनभगवान् द्वारा उपदिष्ट, सब सुखोंका देनेवाला और मोक्ष-प्राप्तिका कारण अत्यन्त पवित्र सम्यग्ज्ञान प्राप्त करनेका यत्न करें।

२३–दृढ़सूर्यकी कथा।

लोकालोकके प्रकाश करनेवाले–केवलज्ञान द्वारा संसारके सब पदार्थोंको जानकर उनका स्वरूप कहनेवाले और देवेन्द्रादि द्वारा पूज्य श्रीजिनभगवान्को नमस्कार कर मैं दृढ़सूर्यकी कथा लिखता हूं, जो कि जीवोंको विश्वासकी देनेवाली है।

उज्जयिनीके राजा जिस समय धनपाल थे, उस समयकी यह कथा है। धनपाल उस समयके राजाओंमें एक प्रसिद्ध राजा थे। उनकी महारानीका नाम धनवती था। एक दिन धनवती अपनी सखियोंके साथ वसन्तश्री देखनेको उपवनमें गई। उसके गलेमें एक बहुत कीमती रत्नोंका हार पड़ा हुआ था। उसे वहीं आई हुई एक वसन्तसेना नामकी वेश्याने देखा। उसे देखकर उसका मन उसकी प्राप्तिके लिये आकुलित हो उठा। उसके विना उसे अपना जीवन भी निष्फल जा. पड़ने लगा। वह दुःखी होकर अपने घर लौटी। सारे दिन वह उदास रही। जब रातके समय उसका प्रेमी दृढ़सूर्य आया तब उसने उसे उदास देखकर पूछा–प्रिये, कहो! कहो! जल्दी कहो!! तुम आज अप्रसन्न कैसी? वसन्तसेनाने उसे अपने लिये इस प्रकार खेदित देखकर कहा–आज मैं उपवनमें गई हुई थी। वहाँ मैंने राजरानीके गलेमें एक हार देखा है। वह बहुत ही सुन्दर है।

उसे आप लाकर दें तब ही मेरा जीवन रह सकता है और तब ही आप मेरे सच्चे प्रेमी हो सकते हैं।

दृढ़सूर्य हारके लिये चला। वह सीधा राजमहल पहुँचा। भाग्यसे हार उसके हाथ पड़ गया। वह उसे लिये हुए राजमहलसे निकला। सच है–लोभी, लंपटी कौन काम नहीं करते? उसे निकलते ही पहरेदारोंने पकड़ लिया। सबेरा होनेपर वह राजसभामें पहुँचाया गया। राजाने उसे शूलीकी आज्ञा दी। वह शूलीपर चढ़ाया गया। इसी समय धनदत्त नामके एक सेठ दर्शन करनेको जिनमन्दिर जा रहे थे। दृढ़-सूर्यने उनके चेहरे और चालढालसे उन्हें दयालु समझकर उनसे कहा–सेठजी, आप बड़े जिनभक्त और दयावान् हैं, इसलिये आपसे प्रार्थना है कि मैं इस समय बड़ा प्यासा हूं, सो आप कहींसे थोड़ासा जल लाकर मुझे पिलादें, तो आपका बड़ा उपकार हो। धनदत्तने उसकी भलाईकी इच्छासे कहा–भाई, मैं जल तो लाता हूं, पर इस बीचमें तुम्हें एक बात करनी होगी। वह यह कि–मैंने कोई बारह वर्षके कठिन परिश्रम द्वारा अपने गुरुमहाराजकी कृपासे एक विद्या सीख पाई है, सो मैं तुम्हारे लिये जल लेनेको जाते समय कदाचित् उसे भूल जाऊँ तो उससे मेरा सब श्रम व्यर्थ जायगा और मुझे बहुत हानि भी उठानी पड़ेगी, इसलिये उसे मैं तुम्हें सौंप जाता हूं। मैं जब जल लेकर आऊँ तब तुम मुझे वह पीछी लौटा देना। यह कहकर परोपकारी धनदत्त स्वर्ग-मोक्षका सुख देनेवाला पंच नमस्कारमंत्र उसे सिखाकर आप जल लेनेको चला गया। वह जल लेकर वापिस लौटा, इत-

नेमें दृढ़सूर्यकी जान निकल गई—वह मर गया। पर वह मरा नमस्कारमंत्रका ध्यान करता हुआ। उसे सेठके इस कहनेपर पूर्ण विश्वास होगया था कि वह विद्या महाफलके देने-वाली है। नमस्कारमंत्रके प्रभावसे वह सौधर्मस्वर्गमें जाकर देव हुआ। सच है—पंच नमस्कारमंत्रके प्रभावसे मनुष्यको क्या प्राप्त नहीं होता?

इसी समय किसी एक दुष्टने राजासे धनदत्तकी शि-कायत करदी कि, महाराज, धनदत्तने चोरके साथ कुछ गुप्त मंत्रणा की है, इसलिये उसके घरमें चोरीका धन होना चाहिये। नहीं तो एक चोरसे बातचीत करनेका उसे मत-लब? ऐसे दुष्टोंको और उनके दुराचारोंको धिक्कार है, जो व्यर्थ ही दूसरोंके प्राण लेनेके यत्नमें रहते हैं और परोपकार करनेवाले सज्जनोंको भी जो दुर्वचन कहते रहते हैं। राजा सुनते ही क्रोधके मारे आग बबूला हो गये। उन्होंने विना कुछ सोचे विचारे धनदत्तको बाँध ले आनेके लिये अपने नौकरोंको भेजा। इसी समय अवधिज्ञान द्वारा यह हाल सौधर्मेन्द्रको, जो कि दृढ़सूर्यका जीव था, मालूम हो गया। अपने उपकारीको कष्टमें फँसा देखकर वह उसी समय उज्ज-यिनीमें आया और स्वयं ही द्वारपाल बनकर उसके घरके दरवाजेपर पहरा देने लगा। जब राजनौकर धनदत्तको पकड़नेके लिये घरमें घुसने लगे तब देवने उन्हें रोका। पर जब वे हठ करने लगे और जबरन घरमें घुसने ही लगे तब देवने भी अपनी मायासे उन सबको एक क्षणभरमें धरा-शायी बना दिया। राजाने यह हाल सुनकर और भी

बहुतसे अपने अच्छे अच्छे शूरवीरोंको भेजा, देवने उन्हें भी देखते देखते पृथ्वीपर लौटा दिया। इससे राजाका क्रोध अत्यन्त बढ़ गया। तब वे स्वयं अपनी सेनाको लेकर धनदत्तपर आ चढ़े। पर उस एक ही देवने उनकी सारी सेनाको तीन तेरह कर दिया। यह देखकर राजा भयके मारे भागने लगे। उन्हें भागते हुए देखकर देवने उनका पीछा किया और वह उनसे बोला-आप कहीं नहीं भाग सकते। आपके जीनेका एक मात्र उपाय है, वह यह कि आप धनदत्तके आश्रय जायँ और उससे अपने प्राणोंकी भीख माँगे। विना ऐसा किये आपकी कुशल नहीं। सुनकर ही राजा धनदत्तके पास जिनमन्दिर गये और उन्होंने सेठसे प्रार्थना की कि–धनदत्त, मेरी रक्षा करो! मुझे बचाओ! मैं तुम्हारे शरणमें प्राप्त हूं। सेठने देवको पीछे ही आया हुआ देखकर कहा–तुम कौन हो? और क्यों हमारे महाराजको कष्ट दे रहे हो? देवने अपनी माया समेटी और सेठको प्रणाम करके कहा–हे जिनभक्त सेठ, मैं वही पापी चोरका जीव हूं, जिसे तुमने नमस्कारमंत्रका उपदेश दिया था। उसीके प्रभावसे मैं सौधर्मस्वर्गमें महर्द्धिक देव हुआ हूं। मैंने अवधिज्ञान द्वारा जब अपना पूर्वभवका हाल जाना तब मुझे ज्ञात हुआ कि इस समय मेरे उपकारीपर बड़ी आपत्ति आ रही है, इसलिये ऐसे समयमें अपना कर्तव्य पूरा करनेके लिये और आपकी रक्षाके लिए मैं आया हूं। यह सब माया मुझ सेवककी ही की हुई है। इस प्रकार सब हाल सेठसे कहकर और रत्नमय भूषणादिसे उसका यथोचित सत्कार कर देव स्वर्गमें चला

गया। जिनभक्त धनदत्तकी परोपकारबुद्धि और दूसरोंके दुःख दूर करनेकी कर्त्तव्यपरता देखकर राजा वगैरहने उसका खूब आदर सम्मान किया। सच है—" धार्मिकः कैर्न पूज्यते " अर्थात् धर्मात्माका कौन सत्कार नहीं करता?

राजा और प्रजाके लोग इस प्रकार नमस्कारमंत्रका प्रभाव देखकर बहुत खुश हुए और पवित्र जिनशासनके श्रद्धानी हुए। इसी तरह धर्मात्माओंको भी उचित है कि वे अपने आत्महितके लिये भक्तिपूर्वक जिनभगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्ममें अपनी बुद्धिको स्थिर करें।

---

२४ यमपाल चांडालकी कथा।

क्ष—सुखके देनेवाले श्रीजिनभगवान्‌को धर्मप्राप्तिके लिये नमस्कार कर मैं एक ऐसे चाण्डालकी कथा लिखता हूं, जिसकी कि देवों तकने पूजा की है।

काशीके राजा पाकशासनने एक समय अपनी प्रजाको महामारीसे पीड़ित देखकर ढिंढोरा पिटवा दिया कि "नन्दीश्वरपर्वमें आठ दिन पर्यन्त किसी जीवका वध न हो। इस राजाज्ञाका उल्लंघन करनेवाला प्राणदंडका भागी होगा।" वहीं एक सेठपुत्र रहता था। उसका नाम तो था धर्म, पर असलमें वह महा अधर्मी था। वह सात-व्यसनोंका सेवन करनेवाला था। उसे मांस खानेकी बुरी

आदत पड़ी हुई थी। एक दिन भी विना मांस खाये उससे नहीं रहा जाता था। एक दिन वह गुप्तरीतिसे राजाके बगीचेमें गया। वहाँ एक राजाका खास मेंढा बँधा करता था। उसने उसे मार डाला और उसके कच्चे ही मांसको खाकर वह उसकी हड्डियोंको एक गड्ढेमें गाड़ गया। सच है–

व्यसनेन युतो जीवः सत्यं पापपरो भवेत्।

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्–व्यसनी मनुष्य नियमसे पापमें सदा तत्पर रहा करते हैं। दूसरे दिन जब राजाने बगीचेमें मेंढा नहीं देखा और उसके लिये बहुत खोज करनेपर भी जब उसका पता नहीं चला, तब उन्होंने उसका शोध लगानेको अपने बहुतसे गुप्तचर नियुक्त किये। एक गुप्तचर राजाके बागमें भी चला गया। वहांका बागमाली रातको सोते समय सेठपुत्रके द्वारा मेंढेके मारे जानेका हाल अपनी स्त्रीसे कह रहा था, उसे गुप्तचरने सुन लिया। सुनकर उसने महाराजसे जाकर सब हाल कह दिया। राजाको इससे सेठपुत्रपर बड़ा गुस्सा आया। उन्होंने कोतवालको बुलाकर आज्ञा की कि, पापी धर्मने एक तो जीवहिंसा की और दूसरे राजाज्ञाका उल्लंघन किया है, इसलिये उसे लेजाकर शूली चढ़ा दो। कोतवाल राजाज्ञाके अनुसार धर्मको शूलीके स्थानपर लिवा ले गया और नौकरोंको भेजकर उसने यमपाल चाण्डालको इसलिये बुलाया कि वह धर्मको शूलीपर चढ़ादे। क्योंकि यह काम उसीके सुपुर्द था। पर यमपालने एक दिन सर्वौषधिऋद्धिधारी मुनिराजके द्वारा जिनधर्मका

पवित्र उपदेश सुनकर, जो कि दोनों भवोंमें सुखका देने-
वाला है, प्रतिज्ञा की थी कि " मैं चतुर्दशीके दिन कभी
जीवहिंसा नहीं करूंगा।" इसलिये उसने राजनौकरोंको
आते हुए देखकर अपने व्रतकी रक्षाके लिये अपनी स्त्रीसे
कहा–प्रिये, किसीको मारनेके लिये मुझे बुलानेको राज-
नौकर आ रहे हैं, सो तुम उनसे कह देना कि घरमें वे नहीं
हैं, दूसरे ग्राम गये हुए हैं। इस प्रकार वह चाण्डाल अपनी
प्रियाको समझाकर घरके एक कोनेमें छुप रहा। जब राज-
नौकर उसके घरपर आये और उनसे चाण्डालप्रियाने अपने
स्वामीके बाहर चले जानेका समाचार कहा, तब नौकरोंने
बड़े खेदके साथ कहा–हाय! वह बड़ा अभागा है। दैवने
उसे धोका दिया। आज ही तो एक सेठपुत्रके मारनेका
मौका आया था और आज ही वह चल दिया! यदि वह
आज सेठपुत्रको मारता तो उसे उसके सब वस्त्राभूषण
प्राप्त होते। वस्त्राभूषणका नाम सुनते ही चाण्डालिनीके मुहँमें
पानी भर आया। वह अपने लोभके सामने अपने स्वामीका
हानिलाभ कुछ नहीं सोच सकी। उसने रोनेका ढोंग बनाकर
और यह कहते हुए, कि हाय वे आज ही गांवको चले गये,
आती हुई लक्ष्मीको उन्होंने पाँवसे ठुकरादी, हाथके इशा-
रेसे घरके भीतर छुपे हुए अपने स्वामीको बता दिया।
सच है—

स्त्रीणां स्वभावतो माया किं पुनर्लोभकारणे।
प्रज्वलन्नपि दुर्वह्निः किं वाते वाति दारुणे॥

(ब्रह्म नेमिदत्त)

अर्थात्—स्त्रियाँ एक तो वैसे ही मायाविनी होती हैं, और फिर लोभादिका कारण मिल जाय तब तो उनकी मायाका कहना ही क्या? जलता हुआ अग्नि वैसे ही भयानक होता है और यदि ऊपरसे खूब हवा चल रही हो तब फिर उसकी भयानकताका क्या पूछना?

यह देख राजनौकरोंने उसे घर बाहर निकाला। निकलते ही निर्भय होकर उसने कहा—आज चतुर्दशी है और मुझे आज अहिंसाव्रत है, इसलिये मैं किसी तरह—चाहे मेरे प्राण ही क्यों न जायें कभी हिंसा नहीं करूंगा। यह सुन नौकर लोग उसे राजाके पास लिवा ले गये। वहीं भी उसने वैसा ही कहा। ठीक है—

यस्य धर्मे सुविश्वासः क्वापि भीतिं न याति स।

(ब्रह्म नेमिदत्त)

अर्थात्—जिसका धर्मपर दृढ़ विश्वास है, उसे कहीं भी भय नहीं होता। राजा सेठपुत्रके अपराधके कारण उसपर अत्यन्त गुस्सा हो ही रहे थे कि एक चाण्डालकी निर्भयपनेकी बातोंने उन्हें और भी अधिक क्रोधी बना दिया। एक चाण्डालको राजाज्ञाका उल्लंघन करनेवाला और इतना अभिमानी देखकर उनके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा। उन्होंने उसी समय कोतवालको आज्ञा की कि जाओ, इन दोनोंको लेजाकर अपने मगर मच्छादि क्रूर जीवोंसे भरे हुए तालावमें डाल आओ। वही हुआ। दोनोंको कोतवालने तालावमें डलवा दिया। तालावमें डालते ही पापी धर्मको तो जलजीवोंने खा लिया। रहा यमपाल, सो वह अपने जीवनकी

कुछ परवा न कर अपने व्रतपालनमें निश्चल बना रहा। उसके उच्च भावों और व्रतके प्रभावसे देवोंने आकर उसकी रक्षा की। उन्होंने धर्मानुरागसे तालावहीमें एक सिंहासनपर यमपाल चाण्डालको बैठाया, उसका अभिषेक किया और उसे खूब स्वर्गीय वस्त्राभूषण प्रदान किये—खूब उसका आदर सम्मान किया। जब राजा प्रजाको यह हाल सुन पड़ा, तो उन्होंने भी उस चाण्डालका बडे आनंद और हर्षके साथ सम्मान किया। उसे खूब धनदौलत दी। जिनधर्मका ऐसा अचिन्त्य प्रभाव देखकर और और भव्य पुरुषोंको उचित है कि वे स्वर्ग-मोक्षका सुख देनेवाले जिनधर्ममें अपनी बुद्धिको लगावें। स्वर्गके देवोंने भी एक अत्यन्त नीच चाण्डालका आदर किया, यह देखकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंको अपनी अपनी जातिका कभी अभिमान नहीं करना चाहिये। क्योंकि पूजा जातिकी नहीं होती, किन्तु गुणोंकी होती है।

यमपाल जातिका चाण्डाल था, पर उसके हृदयमें जिनधर्मकी पवित्र वासना थी, इसलिये देवोंने उसका सम्मान किया, उसे रत्नादिकोंके अलंकार प्रदान किये, अच्छे अच्छे वस्त्र दिये, उसपर फूलोंकी वर्षाकी। यह जिन-भगवान्के उपादिष्ट धर्मका प्रभाव है। वे ही जिनेन्द्रदेव, जिन्हें कि स्वर्गके देव भी पूजते हैं, मुझे मोक्षश्री प्रदान करें। यह मेरी उनसे प्रार्थना है।